"वैदिक साहित्य में प्रतिबिंबित कृषि व्यवस्था"

डॉ0 शक्ति पाण्डेय

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय,

चित्रकूट सतना (म0प्र0)

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की सर्वाधिक कार्यशील जनसंख्या आज भी कृषि में संलग्न है। खाद्यान्न उत्पादक के अतिरिक्त कृषि सम्बंधी विभिन्न उत्पाद शिल्प् व उद्योगों में मध्यवर्ती वस्तुओं के रूप में प्रयुक्त होकर अर्थव्यवस्था में अपना प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष योगदान देते हैं। अपना उद्देश्य कृषि की इस विशेषता को दृष्टिगत रखते हुए वैदिक साहित्य में उसको दी गई महत्ता को प्रतिबिंबित करना है।

वैदिक साहित्य में कृषि सम्बन्धी व्यापक उल्लेख प्राप्त होते हैं। ऋग्वेद् संहिता में पशुपालन के साथ–साथ कृषि की भी पर्याप्त चर्चा की गई है।

खेती सीखने–सिखाने का वर्णन ऋग्वेद के प्रथम मंडल में प्राप्त होता है, जहाँ उल्लेख किया गया है कि अश्विन देवताओं ने मन को हल चलाना और जौ की खेती करना सिखाया–

भव कृकेणाश्विनावपन्ते
से दुहन्ता मनुषाम दस्त्रा
अभि दस्युं वकुरेणा घमन्तो
रूज्योतिश्रृक मुरार्थाथ।[1]

ऋग्वेद (1/117/21)

एक स्थान पर इन्द्र और पूषन से जोतने में सहायता देने के लिए प्रार्थना की गई है। **ऋग्वेद् में दशवें मण्डल में कृषि सम्बन्धी लगभग सभी प्रक्रियाओं का उल्लेख है– जंगल काटने, भूमि जोतकर बीज बोने, हसिया से काटकर फसल घर ले जाने, खलिहान में फसल ले जाकर मड़ाई करने का उल्लेख, भूसा अलग करने के लिए चलनी (तितऊ) ओर सूप (शूर्प) का वर्णन है। उसाई करने वाला 'धान्यकृत' कहलाता था। 8 अन्य मापने के बर्तन को 'उर्दर' कहा गया है।**

वैदिक साहित्य के प्रारम्भिक संहिता ऋग्वेद् में खेती होने वाले अन्न 'यव' और 'धान्य' का उल्लेख हुआ है। इस अन्न की पहचान को लेकर विद्वानों में मतैम्य का अभाव दिखता है। ओम प्रकाश अपनी पुस्तक में अभिमत व्यक्त करते हैं कि– ऋग्वेद में केवल जौ और धान्य का उल्लेख है धान्य का अर्थ अधिकतर विद्वान् अनाज समझते हैं। यद्यपि हिन्दी में बिना तुंस निकाले चावल को आजकल भी धान कहते हैं। वही **द्विजेन्द्र नारायण झा और कृष्ण श्रीमाली** का मत है कि ऋग्वेद में एक ही अनाज अर्थात् 'यव' का उल्लेख है, जो या तो विभिन्न प्रकार के अनाजों का सामान्य नाम से द्योतक है या फिर जैसा कि अधिक संभव है– परिवर्तीकालीन संहिताओं की तरह जौ का सूचक माना जा सकता है।[2] न सिर्फ कृषि और कृषि क्रियाओं का ही बल्कि सिंचाई, खाद आदि के प्रयोग का भी वर्णन ऋग्वेद् में मिलता है जो उत्पादकता में वृद्धि करने के रुचि व प्रयास को सांकेतिक करता है। **ऋग्वेद में सिंचाई के साधनों में कुएँ (अवट), द्रोण, अहाव का उल्लेख है।**[3] कुएँ से सिंचाई का पानी खींचने के लिए चरस (कोष), बरत (वस्त्रा) और हमारी (अश्म–चक्र) के प्रयोग किए जाने का वर्णन है।[4] कुएँ से ऊपर निकाले हुए पानी को चौड़ी नालियों जिन्हें '**सुषिरा सूर्मि**' कहा गया है के द्वारा खेतों में ले जाया जाता था। पोखर और नहरों (कुल्या) से सिंचाई की भी चर्चा की गई है। कभी–कभी

अतिवृष्टि से भी कृषि को क्षति पहुँचती थी। इसी संदर्भ में ऋग्वेद में स्थान–स्थान पर वर्षा के लिए प्रार्थनाएँ की गई हैं।

ईश्वरी प्रसाद और शैलेन्द्र शर्मा का मत है कि खेत यद्यपि व्यक्तिगत सम्पत्ति थे, परन्तु चारागाह सामूहिक सम्पत्ति माने जाते थे।[5] ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर अच्छी खेती के लिए प्रार्थना की गई है तथा कृषि को क्षति पहुंचाने वाले कीड़े–मकोड़े का, पक्षियों का भी उल्लेख किया गया है।

ऋग्वेद् में उल्लिखित कृषि सम्बन्धी विवरणों के सम्बन्ध में विद्वानों जिसमें **द्विजेन्द्र नारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली और राधाकुमुद मुखर्जी** उल्लेखनीय है का मत है कि ऋग्वेद में पशुचारण की तुलना में कृषि का धंधा नगण्य सा था।[6] वास्तव में ऋग्वेद के कुल 10,462 श्लोकों में से केवल 24 में ही कृषि का उल्लेख है। इनमें से अधिकांश उल्लेख क्षेपक माने जाते हैं। संहिता के मूल भाग में तो कृषि के महएए।ऐ केवल तीन ही शब्द **'उर्दर', 'धान्य' एवं 'वपन्ति'**[21] मिलता है। कृष्टि शब्द का उल्लेख यद्यपि 33 बार हुआ है किन्तु लोगों के अर्थ में जैसे पंचकृष्टयः।

परवर्ती संहिताओं में कृषि सम्बन्धी उल्लेखों से कृषि की मानव–जीवन में आवश्यकता व महत्ता स्पष्ट होती है। इस संदर्भ में **अथर्ववेद् का वर्णन प्रसांगिक है–**

''मेरा जो अंग अभिलाषी अन्न के अभाव में व्यर्थ विनती के कारण बेचैन हो रहा है और मैं विक्षिप्त सा हो गया हूँ, मेरे उस अंग को सरस्वती स्वाभाविक दशा को ग्रहण करायें।[7]

वरूणदेव के लिए समस्त नदियाँ प्रवहमान है। 'अम्बर रूपी' पिता के लिए और मुख्य देवों के लिए पुत्र रूप मनुष्य हवि प्रदान आदि कार्य करते है। अम्बर, धरा, मनुष्यों के मंगल के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते और अन्न जल से सम्पन्न करते हैं'।

अथर्ववेद में ही एक मंत्र में भूमि की उर्वरता की समृद्धि हेतु वृष्टि के लिए प्रार्थना की गई है– 'हे धरा जननी! हल के द्वारा जोती जाने पर भी आप भारी वृष्टि को सहन करने योग्य रहें । हे पर्जन्य! आप अद्भुत बादलों से श्रेष्ठ वृष्टि को प्रदान करें'।

जहाँ सोमदेव की अर्चना होती है, सोमादि औषधियाँ होती हैं, वहाँ उचित समय पर पर्याप्त होती है, और सभी तरह का कल्याण होता है। ग्रीष्म असह्य ताप नहीं प्रदान करता और न ही शीत में वस्तुएँ बर्फ से गलती है। वृष्टि उपयुक्त होने पर भूमि समृद्धि को ग्रहण करती है।''

ओम प्रकाश के अनुसार परिवर्ती संहिताओं के अध्ययनोपरान्त यह कहा जा सकता है कि इनमें कृषि के पूर्ण विकास का प्रतिबिम्ब दिखता है। इसके लिए हमारे पास पर्याप्त साक्ष्य है। अथर्ववेद् में 6–12 बैल हल में जोतकर गहरी जुताई करने का वर्णन है। (6/91/1) अथर्ववेद् में ही खाद के प्रयोग का उल्लेख है जहाँ पशुओं की प्राकृतिक खाद को मूल्यवान माना गया है।

यजुर्वेद् संहिता में फसलों के बोने का समय उल्लिखित है जिसमें कहा गया है कि– जौ जाड़े में बोया जाता था और ग्रीष्म ऋतु में काटा जाता था और चावल वर्षा में बोया जाता था तथा पतझड़ में काटा जाता था[8]। तैत्तरीय संहिता में तो एक वर्ष में दो ब्राहण में कृषि की चारों क्रियाओं **जुताई (कृषन्तः), बुवाई (वपन्तः), कटाई (लुनन्तः), मड़ाई (मृणन्तः)** का उल्लेख है।

परिवर्ती संहिताओं में फसलों की बहुलता देखने को मिलती है। अथर्ववेद् में जौ, ब्रीहि (चावल), तिल, उड़द, ईख, श्यामाक का उल्लेख है। ओम प्रकाश अपनी पुस्तक '**फूड एण्ड ड्रिंक्स इन एसिमेंट इण्डिया**' में उल्लिखित करते हैं कि–यजुर्वेद में चावल की 5 किस्मों का उल्लेख है– महाब्रीहि, कृष्णब्रीहि, शुक्लब्रीहि, आशुधान्य और हाय्न महाब्रीहि इसमें सबसे अच्छी किस्म मानी जाती थी। आशुधान्य इसमें सबसे अच्छी किस्म मानी जाती थी। आशुधान्य जल्दी पकता था और हायन नाम का लाल चावल एक वर्ष में पकता था। उनके अनुसार, यजुर्वेद में कुछ तृणधान्यों का भी उल्लेख मिलता है जैसे कि प्रियंगु, अणु, श्यामक नांब आदि। पुनः वे यजुर्वेद में उड़द, मूंग मसूर आदि दालों के वर्णन का भी जिक्र करते हैं। फलों के संदर्भ में उनका कहना है कि फलों में उत्तरवैदिक काल के ग्रंथों में बेर की तीन किस्मों बदर, कुवल और कर्कुन्ध, बेल, खजूर आम, आंवले का उल्लेख मिलता है। आगे शाकों और सब्जियों की चर्चा करते हुए कहते हैं कि शाकों में ककड़ी, कमल ककड़ी (बिस), कम की जड़, लौकी और सिंगाड़ों का वर्णन वैदिक कालीन ग्रन्थों में मिलता है। पुनः सरसों और राई तथा मसालों में हल्दी मिर्च तथा नीबू के उपत्पादन होने का भी उल्लेख करते हैं।

एन0सी0 बन्धोपाध्याय के अनुसार सोम के अतिरिक्त अपामार्ग, नलद आदि औषधियों और भंग का उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है। कृषि में प्रयुक्त होने वाले औजारों/उपकरणों से भी कृषि की स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। काठक संहिता 30 में 24 बैलों से खींचे जाने वाले हल से न सिर्फ कृषि की तकनीक में प्रगति बल्कि कृषि क्षेत्र का विस्तार भी संसूचित होता है क्योंकि इतने बड़े हल का प्रयोग निश्चित रूप से बड़े भू–भाग पर खेती के सदंर्भ में ही होता होगा। इसी **काठक संहिता में हल की खूड को सीता कहा गया है।**[9]

कृषकों को विशेष नाम 'किनाश' से जाना जाता था। अथर्ववेद में खेती की कला की जानकारी का श्रेय पुथ्वुबैन्य को दिया गया है।

वैदिक साहित्य के अवलोकन से यह भी अभिज्ञात होता है कि कृषि को किससे नुकसान होता था और उसके लिए सिंचाई की कितनी आवश्यकता थी। ध्यातव्य है कि भारतीय कृषि मानसून का जुआ है। यह उक्ति उस समय और भी सत्य रही होगी क्योंकि आज तकनीकी विकास के इस युग में भी हम पूरे कृषि क्षेत्र की सिंचाई की व्यवस्था नहीं कर सके हैं। इस संदर्भ में अथर्ववेद् में मौसम की भविष्यवाणी करने वाले का उल्लेख मिलता है। इसी संहिता में ऐसे मंत्रों का वर्णन है जिसमें सूखा, बिजली और बाढ़ के प्रभाव को समाप्त किया जा सकता था। इस संहिता में शीघ्र वर्षा के लिए प्रार्थना की गई है।

परि धामिव सूयार्ऽहीनां जनिमागम्।
रात्री जगदि्वान्यद्बं सात् तेना ते बारये विषम्।।
अनयाहमोषहया सर्वाः कृत्या अददुषम्।
यां क्षेत्रे चक्रुयां गोषु यां वां ते पुरूषषेषु।। [10]

कृषि को कीड़े–मकोड़े व टिड्डियों से भी हानि पहुंचती थी। इस संदर्भ में अथर्ववेद् में कुछ मंत्रों का उल्लेख है जिसमें कीड़े–मकोड़े व टिड्डियों को नष्ट किया जा सके। 'छान्दोग्य उपनिषद्' में भी टिड्डियों द्वारा सफल नष्ट होने के कारण दुर्भिक्ष का वर्णन मिलता है। इस दुर्भिक्ष के कारण ऋषि चक्रायण को सपतनीक कुरू देश छोड़कर अन्य प्रदेश में जाना पड़ा और कुल्माष खाकर रहना पड़ा था। इस विवरण से यह ज्ञात होता है कि अकाल के समय लोगों को घर छोड़कर जाना पड़ता था और अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता था।

वैदिक साहित्य में कृषि सम्बन्धी एक तकनीकी प्रगति जो सिंचाई से सम्बन्धित है का उल्लेख किए बिना कृषि के प्रति उन लोगों की प्रतिबद्धता अधूरी रह जाएगी। **अथर्ववेद् में**

सिंचाई के लिए नहर खोदने का वर्णन दिया गया है। कौशिक सूत्र में उस धार्मिक क्रिया का वर्णन है जिसके बाद नहर से पनी खेतों में छोड़ा जाता था।

खेती के सम्बन्ध में एक बात और भी ध्यातव्य है कि भूमि खण्ड का मालिक कौन होता था किसान, राजा या सामूहिक अधिकारिता कृषि योग्य भूमि के स्वामित्त्व के विषय में विद्वानों में मतैम्य का अभाव हैं कुछ विद्वानों के अनुसार प्रत्येक भूमिखण्ड का स्वामी वह किसान होता था जो उस पर खेती करता था। कुछ अन्य विद्वानों का मानना है कि खेतों के स्वामी ग्राम के पूरे निवासी होते थे। जबकि कुछ विद्वानों का मानना है कि भूमि का स्वामी शासक होता था। स्वामित्त्व के संदर्भ में वैदिक साहित्य से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है– ऋग्वेद् में खेतों को मापे जाने के उल्लेख के साथ ही खेतों को क्यारियों के द्वारा अलग करने का वर्णन है। ऋग्वेद् में अनेक स्थानों पर खेत के स्वामी और खेत को युद्ध में जीतने का वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद के एक सूक्त में अपाला ने अपने पिता के खेत का स्पष्ट वर्णन किया है। उपर्युक्त संदर्भ तो यही इंगित करते हैं कि खेत का स्वामी एक व्यक्ति समझा जाता था।

इसी प्रकार परवर्ती संहिताओं और अन्य वैदिक ग्रन्थों में भी वर्णन मिलते हैं। अथर्ववेद् तथा तैत्तरीय संहिता में खेत के लिए किसी से झगड़ा होने के संदर्भ में कुछ उसे सुलझाने के लिए उपाय के रूप में ग्यारह टीकरों पर इन्द्र और अग्नि की आहुतियाँ देने को कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में तो भूमिखण्ड को बेचने का विरोध किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में ही एक जगह यह वर्णन मिलता है कि क्षत्रिय किसी व्यक्ति को भूमि खण्ड जनता की सम्मति से दे सकता था।

झा एवं श्रीमाली वैदिक कालीन कृषि व्यवस्था पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि–ऋग्वेद के काल की अर्थव्यवस्था के कम से कम प्रारम्भिक चरणों में कृषि का गौण स्थान ही था– इस बात की पुष्टि ऋग्वैदिक देवकुल में देवियों के स्थान से भी हो जाती है क्योंकि इससे देवताओं की तुलना में उन्हें नगण्य ही माना गया है। इन्द्राणी, रोदसी, श्रद्धा, घृति आदि सभी को कोई विशेष महत्ता नही दी गयी है। यहाँ तक की अदिति एवं उषा जैसी तथाकथित महत्त्वपूर्ण देवियों का उल्लेख भी आदर से नहीं हुआ है उदाहरणार्थ, अदिति के लिए कोई अलग सूक्त नहीं है तथा इन्द्र द्वारा उषा का बलात्कार अनेक स्थलों पर वर्णित है।

क्या यह संयोग ही है कि जिन स्थलों पर इन्द्र वम् उषा का द्वन्द वर्णित है, वहाँ अवैदिक मुखियों के विरूद्ध इन्द्र वम् का द्वन्द्व वर्णित है, वहाँ अवैदिक मुखियों के विरूद्ध इन्द्र की सफलता का भी वर्णन है। झा एंव श्रीमाली ड0पी0 कौशाम्बी को उद्वत करते हुए कहते हैं कि कौशाम्बी का यह कहना कि इन्द्र उषा द्वन्द्व में आर्यो एवं अनार्यो के संघर्ष की झलक मिलती है, यदि सत्य न भी हो तो इस बात की ओर तो संकेत करता ही है कि ऋग्वैदिक देवकुल में देवियों का अधिक सम्मान न था, जो कि कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था पर आधारित लोगों की सैद्धांन्ति मान्यताओं के विरूद्ध है। इस विवेचन के पश्चात् झा एवं श्रीमाली इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि प्रारम्भिक वैदिक काल में कृषि नहीं पशुपालन प्रमुख धंधा था ऋग्वैदिक काल के अन्त में कृषि का आगमन हो चुका था–

मद्वाह ंनो मध्यन्दिने सायमस्तु नः।

मद्राहं नो अहां प्रातः रात्रीं भ्रदाहमस्तु नः।। (अथर्ववेद–6/88/2)

यद्यपि अथर्ववेद में मवेशियों की वृद्धि के लिए अनेक प्रार्थनाएँ है, किन्तु उत्तर वैदिक काल में कृषि ही लोगों का प्रमुख धंधा था। इस काल के साहित्य में तो प्रवीरवन्त (धातु की चोंच वाला फल) का भी उल्लेख है। आगे वे कहते हैं कि–चूँकि समाज में स्पष्टतः ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जैसे अनुत्पदी वर्गो का उदय हो चुका था, अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कृषक अपनी आवश्यकता से कहीं अधिक उत्पादन करने की न केवल क्षमता रखते थे, अपितु उन्हें अपने निर्वाह से अधिक करना भी पड़ता था।

यज्ञों के आनुष्ठानिक क्रियाओं से कृषि उत्पादन बढ़ाने के संकेत मिलते हैं महत्त्वपूर्ण यज्ञों जैसे अश्वमेघ, वाजपेय, राजसूय आदि का विस्तृत अध्ययन करने से पता चलता है कि मूलतः इनका उदे्श्य कृषि उत्पादन को बढ़ावा देना था। वाजपेय तो खाद्य पेय एंव पान से सम्बन्धित था ही अश्वमेघ एवं राजसूय भी जो कि तथाकथित राजनीतिक शक्ति के द्योतक माने जाते है, ऐसे अनेक रीति–रिवाज एंव प्रतीकों से भरे पड़े है, जिनसे यह संकेत मिलता है कि इनका

मूल उदे्श्य खाद्य–उत्पादन की वृद्धि करना था। उदाहरणार्थ अधिकांश यज्ञों में किसी न किसी रूप में संभोग क्रिया का एक महत्वपूर्ण स्थान था, जो कि भूमि की उर्वरता एंव प्रजनन शक्ति की प्रतीक थी। वाजपेय यज्ञ में ऐसी क्रियाओं के सम्बन्ध में वृहदराण्यक उपनिषद् तथा वाजसनेयी संहित में महत्त्वपूर्ण उल्लेख है। राजसूय यज्ञ में भी सम्पूर्ण वर्ष के दौरान चलने वाले अनुष्ठानों का अंत ऐसे यज्ञ से होता था, जिसकी अध्यक्षता इन्द्रभुनासीर अर्थात हलयुक्त इन्द्र करता था और जिसका उद्देश्य ‘पस्त प्रजनन शक्ति को पुनः जागृत करना होता था।

की वर्ड– वैदिक साहित्य में कृषि क्रियाएं, वैदिक कालीन कृषि संसाधन, ऋग्वेद् में विभिन्न फसलें, वेदों में दुर्भिक्ष

सारांशः– भारतीय सभ्यता और संस्कृति को अपने सीने में संजाये मानवीय कल्पना के शब्दों और उनकी कृतियों को अपने हर मंत्र लहरियों में अभिव्यक्त करते हुए वैदिक साहित्य ने सम्पूर्ण अर्थशास्त्र में कृषि के महत्त्व को स्थान–स्थान पर प्रदर्शित किया है, वर्तमान की समस्त विषमताओं का समाधान वैदिक साहित्य के प्रत्येक ग्रन्थों में वर्णित है जो न सिर्फ समृद्धि का सूचक है, अपितु विश्व मंच पर भारत को प्रतिष्ठित करने का अभूतपूर्व मंत्र है।

संदर्भ सूची

1. ऋग्वेद (1/117/21)
2. द्विजेन्द्र नारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली, प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली, 1981 पृष्ठ–38
3. ऋग्वेद (10/107/7)
4. ऋग्वेद (10/101/5–6)
5. ईश्वर प्रसाद, शैलेन्द्र शर्मा, प्राचीन भारतीय संस्कृति कला, राजनीति, धर्म, दर्शन, इलाहाबाद, 1986 , पृष्ठ–52
6. राधा कुमुद मुखर्जी, हिन्दु सभ्यता, दिल्ली, 1986 , पृष्ठ–69
7. शतपथ ब्राह्मण (1/6/1/3)
8. तैत्तरीय संहिता (5/1/7/3)
9. काठक संहिता (20/13)
10. अथर्ववेद (6/4/15)